शोध मंथन Vol. XIII No.IV Oct.-Dec. 2022 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Impact Factor 8.783 (SJIF)

अथर्ववेद के सूक्तों में आनन्द तत्व

प्राप्तिः 13.12.2022
स्वीकृतः 24.12.2022

86

डॉ० अर्चना गिरि
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
बरेली कॉलेज, बरेली
ईमेलः *archana.giri.2702@gmail.com*

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।[1]

वह पूर्ण ब्रह्म है, यह पूर्ण जगत है, पूर्ण से ही पूर्ण निकलता है। पूर्ण से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही बचता है। आनन्द तत्व की व्याख्या करना उतना ही कठिन है जितना ब्रह्म को जानना या समझना। यह नश्वर संसार जो तीन प्रकार के तापों से घिरा है, सदा–सदा से ऋषियों–मुनियों को विवेक ज्ञान के लिये प्रेरित करता आया है। यह ज्ञान वेदों से ही प्राप्त होता है। वेद ज्ञानराशि है। अपने तपोबल से मुनिजनों ने दिव्यदृष्टि प्राप्त कर देखा और सूक्तों की रचना की। तीन वेद तो अत्यन्त महत्व के हैं। चौथा वेद अथर्ववेद भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। लौकिक दृष्टि से देखा जाये, तो संसारी जीवों के लिये अर्थात् मनुष्यों के लिये गृहस्थ आश्रम में रहते हुये भी जिस सुख की प्राप्ति का माध्यम अथर्ववेद बनता है वह अत्यन्त दुर्लभ है। हमारा शरीर तथा इन्द्रिय समूह ये आत्मा नहीं है देहात्मक बुद्धि से अलग होकर जब मनुष्य परमात्मा के विशय में सोचता है तब उसे आनन्द का अर्थ प्रकाशित होता है। संसार में रहते हुये भी सत् कर्म करके मानव उस परमतत्व आनन्द को प्राप्त कर सकता है। जैसे महर्षि बाल्मीकि जी को, तुलसी जी को रामायण और राम चरितमानस लिखकर जो आनन्द तत्व प्राप्त हुआ वह आज भी संसार को अमृत बाँट रहा है। उस असीम आनन्द की कोई तुलना नहीं है। हमारा जीवन कमल के पत्र के सदृश होना चाहिये जिसमें विकार, वासना रूपी जल अलग होता रहे। ऐसा व्यक्ति अपनी लौकिक यात्रा में भी ब्रह्म का स्वरूप जानकर अलौकिक आनन्द प्राप्त कर सकता है। यह स्थूल शरीर निर्लिप्त रहकर भी जीवित इस शरीर से ब्रह्म का सायुज्य प्राप्त कर सकता है। आत्मा का प्रकाश जो पांच प्रकार के कोशों से ढँका हुआ है। उसका ज्ञान प्राप्त करके ही हम उसका अनुभव कर सकते हैं। चित्तवृत्ति को शान्त करके हम जब सुशुप्ति की अवस्था में आते हैं तभी रजोगुण और तमोगुण वृत्तियाँ शान्त होकर सत्त्व गुण के साथ मिलकर आत्मा का निर्विकार रूप दिखाती हैं। यही आनन्द की अवस्था है जो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि के रास्ते से होकर साधक को अभीष्ट फल प्रदान करती है। जनकल्याण के लिये मार्ग खोलती है। जीवन के रहते आनन्दतत्व का अनुभव सदा कल्याणकारी होता है क्योंकि उसमे विवेकचक्षु खुल जाते हैं सारा ब्रह्मण्ड ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है। ऋषि कह उठता है, ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः''। ऐसे ऋषि ने जब अनुभूत आनन्द को जनकल्याण की इच्छा से संसार को दिया, तो वह कल्याणकारी चिरन्तन सूक्त के रूप में वेदों में प्रकाशित हो गया। वही वेद जो

सनातन नित्य और अपौरूषेय है। ईश्वर के समतुल्य वेद अनादि अनन्त और अविनश्वर है। उपनिषद को परमात्मा का निःश्वास मानते हैं। मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने वेद से धर्म को उदभूत माना है। इसकी नित्यता की सिद्धि में आचार्य शंकर ने इसकी शब्दप्रमाण से प्रमाणिकता सिद्ध की है। वेदों में आनन्द तत्व या रस तत्व की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब योगी या गृहस्थ अपने जीवन से पूर्ण सन्तुष्ट हो जाये तथा सृष्टि और सृष्टिकर्ता के मध्य अपने मोह और विकारों को दूर करके समर्पण भाव से कर्त्तव्यपथ को आलोकित करे। माया से ढकी यह सृष्टि जीव को ऐसे पाश में बांधती है जिससे मुक्त होने की चेष्टा भी जीव विलासी जीवन में भूल जाता है। भोग और विलास ही उसका ध्येय रह जाता है। बन्धन से जब जीव मुक्ति की इच्छा करता है तभी वह वेदों और उपनिषदों के शरण में जाता है।

हमारा शोधपत्र आनन्द तत्व की व्याख्या के लिये विचारणीय है। वह आनन्द तत्व जिसने मनुष्यों को ही नहीं वरन् देवी–देवताओं को तप करने को विवश किया। इसी से ज्ञान की प्राप्ति होती है क्योंकि यह ज्ञान अनन्त और अगाध है। सृष्टि के साथ–साथ चलता रहेगा। इसकी प्राप्ति ही अमृत रस है जिसको पाने की लालसा में भक्तियुगीन कवि मोक्ष की कामना भूल गये। वे बार–बार धरती, पर आकर ज्ञान प्राप्ति के द्वारा आनन्द तत्व की प्राप्ति की कामना करते हैं। अथर्ववेद अभीष्ट सिद्धि के अमोध उपादान को सूक्तों के रूप में वर्णित करता है। जिससे चित्तवृत्ति में प्रतिफल वरेण्य एवं उर्वर विचार सरिता बहती रहे। जिससे अन्तःकरण मे सद्वृत्तियाँ जागृत होती रहे। वेदमंत्रों के समूह को सूक्त कहा जाता है। जिसमें एक देवता के स्वरूप और कर्म की स्तुति के साथ विशेषता को दर्शाया जाता है। लोकहित का जो उपाय प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं जाना जा सकता है। उस शब्द ही ब्रह्म है ऐसा मानकर वेदज्ञान को ऋषियों ने प्रतिष्ठित किया है। एक आत्मतत्व ही सभी जीवों में विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित है ऐसी भावना की गई है। ऋषियों ने अपने तपोबल का वह श्रेष्ठ अंश स्तुतियों के रूप में संसार को दिया जिससे वास्तविक 'आनन्द' प्राप्त किया जा सकता है। इसलिये चिन्तन, मनन और सद्व्यवहार को ही धर्म कहा गया। 'अथर्ववेद' अपने नाम से जाना जाता है अन्य तीन वेद मंत्रलक्षण से जाने जाते है। अथर्ववेद के अन्य नाम भी हैं – अथर्वाऽबिरोवेद, ब्रहमवेद, भिषग्वेद तथा क्षत्रवेद आदि। थुर्वोधातु हिंसा के अर्थ में जानी जाती है। थुर्वी ही थर्व के रूप में प्रसिद्ध हो गई, अतः जिसमें हिंसा न हो उसे अथर्व कहते हैं। अथर्ववेद दो तरह की हिंसा से बचाता है प्रथम तो वह है जिसमें पारलौकिक सुख में बाधा न आये जिसे आमुश्मिकी हिंसा कहते हैं उसका निवारण अथर्ववेद के बताये मंत्रों और स्तुतियों से करते हैं। दूसरा इह लोक में भी सुख में आने वाली बाधा की शान्ति हो सके इसका उपाय भी वर्णित है। इसलिये लोकयात्रा के सुख से लेकर परलोक गमन तक अथर्ववेद की स्तुतियों के सूक्त मानसिक सुख देकर अदभुत 'आनन्दतत्व' का सृजन करते हैं। जिसमें प्रारम्भ ही गणेश अथर्वशीर्ष सूक्त से हुआ है– जिसमें धरती पर होने वाले मांगलिक कार्यों में गणपतिस्तवन मुख्य कर्म है, इसका पाठ विघ्नों का नाश करता है, महापातकों से बचाता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को प्रदान करता है। गणेश स्तुति करने वाले मनुष्य चित्त को शान्त करके, अपने सत्कर्म और सद्विचार से वह 'आनन्द' प्राप्त करते हैं जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। एक गृहस्थ भी अथर्ववेद के 'देव' सूक्तों का पाठ करके असीम ब्रह्मनन्द को प्राप्त कर लेता है। ऋषि गणक के वाक्य है–

**"ऊँ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्वमसि। त्वमेव केवलं कर्त्तासि। त्वमेव केवलं धर्त्तासि।
त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्वं खल्विदं ब्रहमासि। त्वं साक्षाद आत्मासि नित्यम्।"** [2]

अपने विघ्न नाशक देवता के साथ समर्पित गणक ऋषि का यह मंत्र 'आनन्द तत्व' की उस कल्पना का साकार एवं सारगर्भित रूप है जो उनकी दिव्यदृष्टि से प्रस्फुटित हुआ है। ऋषि कहते हैं कि हे देव! मैं सत्य कह रहा हूँ तुम्हीं वक्ता, श्रोता और धाता हो, तुम्हीं आचार्य एवं शिष्य की रक्षा करो। यह ऋषि की अधीरता और शरणागति 'आनन्द तत्व' का आभास कराने में पूर्णतया सक्षम है। चिंतन की सीमाओं में बंधा ऋषि जब अपनी अभीष्ट सिद्धि के निमित्त आगे बढ़ता है तो 'देवता' के स्वरूपगत प्रकाश का अनुभव करते हुये कहता है कि–

''त्वं वाबमयस्त्वं चिन्मयः। त्वं आनन्दमय, त्वं ब्रह्ममयः। त्वं सच्चिदानन्द अद्वितीयोऽसि। त्वं प्रत्यक्षं ब्रह्मसि। त्वं ज्ञानमयो विज्ञानमयोऽसि।''[3]

इससे ऊँचा ब्रह्म का कोई स्वरूप नहीं हो सकता है वही संसार का वागंमय, वाणी, चित् शक्ति, आनन्दशक्ति और प्रत्यक्षतः अद्वितीय परमात्मा है। ज्ञान–विज्ञान से समाहित वही ब्रह्म है। इस आनन्द की अवस्था से निकले मंत्र यह सिद्ध करते हैं कि साधक अपनी तपस्या से चित् की शुद्धि करके लोक कल्याणार्थ पारलौकिक दृष्टि प्राप्त कर चुका है। इसी कारण ऋषि ने परब्रह्म के स्वरूप में अखिल ब्रहमाण्ड को देखा। साधक की तपस्या का वह चरम उत्कर्ष कितना कठोर और अनुशासित होगा। यह वेदमंत्रों की पंक्तियां स्पष्ट करती हैं। 'आनन्दतत्व' की कैसी पराकाष्ठा है जो साधक को जीवित लोकयात्रा में भी अलौकिक लोक के दर्शन करा रही है–

"सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते। सर्वं जगदिदं त्वत्त–तिष्ठति। सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेश्यति। सर्वं जगदिदं त्वयि प्रत्येति। त्वं भूमिआपोऽनलोऽनिलो नमः। ...त्वं गुणत्रयातीतः। त्वं कालत्रयातीतः। त्वं देहत्रयातीतः। त्वं मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्। त्वं शक्तित्रयात्मकः। त्वां योगिनोध्यायन्ति नित्यम्। ...त्वं भूः भुर्वःस्वरोम।"[4]

समाधि की अवस्था में स्थित सभी चक्रों को साधे हुये जागृत कुण्डलिनी वाले ऋषि के 'आनन्द रस' का अनुभव ही यदि शुद्ध मन से कर लिया जाये तो पायेंगे कि ऋषि अपनी आत्मा के प्रकाश में परमात्मा के स्वरूप का दर्शन कर रहा है। पंचतत्वों में ब्रहम को पाता है ऊँकार शब्द से मंडित वाणी के चारों भेद में ब्रहम का दर्शन करता है, माया के तीनों गुणों से परे ब्रहम का दर्शन करता है, तीनों कालों से परे महाकाल रूप में दर्शन करता है। वह परब्रहम कारण शरीर से भी परे है ऐसे स्वरूप को वह अपने मूलाधार चक्र में स्थित पाता है। अपने अन्दर शक्ति, उत्साह और मंत्रशक्ति का प्रभाव अनुभूत करता है। ब्रहम के सगुण और निर्गुण स्वरूप को देखता हुआ ऋषि उस असीम आनन्द की तृप्ति से युक्त होकर मंत्राक्षर की व्याख्या करता है। धन्य है यह ज्ञान जो सीमा से पार होकर ऋषि के शरीर में इसलिये समा जाता है कि ईश्वर यही चाहता है कि जीव के कल्याण का माध्यम इस ऋषि को बनाया जाये। यह वाणी ब्रहम के स्वरूप की और चिंतन की व्याख्या युगो युगों तक करती रहेगी।

''गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादिं तदनन्तरम्। अनुस्वारः परतरः। अर्धेन्दुलसितं। तारेण रूद्धम्। एतत्तव मनुस्वरूपम्। गकारः पूर्वरूपम्। अकारो मध्यमरूपम्। अनुस्वारश्चान्त्यरूपम्। बिन्दुः उत्तररूपम्। नादः सन्धानम्। संहिता सन्धिः। सैशा गणेशविद्या। गणकः ऋशिः निचृद्गायत्री, छन्दः। गणपति। देवता। ऊँ गं गणपतये नमः।''[5]

गणक ऋषि ने इसे गणेश विद्या का नाम दिया क्योंकि साधना में ऋषि ने मंत्राक्षरों की विशिष्टता देखी। मंत्र का स्वरूप देखा। गृहस्थों या साधकों के कल्याण के लिये 'मंत्र' का निर्माण

किया। सूक्ष्म रूप प्रदान किया। यही सूक्ष्म मंत्र गणेश विद्या का आधार है। इसी के जप से साधक आत्मकल्याण करके परब्रहम से आत्म साक्षात्कार कर लेता है। मंत्र के स्वरूप ज्ञान के पश्चात् ही साधक के ध्यान में वह लोक कल्याणकारी स्वरूप आता है जिसको ऋषियों ने मानव शरीर जैसा साक्षाद दर्शन किया– मुख गजानन का और चर्तुहस्त था, वरदमुद्रा अलौकिक थी एवं वस्त्राभूषण से सज्जित यह सब देखकर ऋषि अपने तपोबल से वह देखता है जिसे आर्शदृष्टिगत स्वरूप कहते है। यह योगियों के ही ध्यान में आ सकता है। योग की ऐसी पराकाष्ठा ही हमारी अध्यात्म शक्ति है। योगशास्त्र को धरती पर प्रसृत करने का वह बीज है जो वृक्ष के रूप में प्राप्त हुआ। ऋषि ने इस स्वरूप को जनमानस के कल्याण के लिये सूर्य की शक्ति गायत्री के साथ जोड़कर मंत्र का स्वरूप ब्रहमाण्ड में सृष्टि के अन्त तक वेद मंत्रों के रूप में प्रवाहित कर दिया–

"एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डायधीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्। एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशम् अंकुशधारिणम्। रदं च वरदं हस्तैविभ्राणं मूशक–ध्वजम्। रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्। भक्तानुकम्पिनं देवं जगत्कारणमच्युतम्। आविर्भूतं च सृष्टयादौ प्रकृतेः पुरूषात्परम्। एवं ध्यायति यो नित्यं स योगी योगिनां वरः।।"[6]

गणक ऋषि ने जब लौकिक यात्रा में विचरते, भोगों को भोगते जीव को यह बताया कि रक्तवर्ण के पुष्पों से पूजित यह देव सबकी मनोकामना पूर्ण करने वाले हैं, ज्योतिर्मय स्वरूप वाले हैं, अच्युत हैं प्रकृति और पुरुष से परे हैं सृष्टि के आदि में ही आविर्भूत हुये हैं। जनमानस ने जब मनोकामना पूरी करने वाला आनन्द तत्व से भरे इस मंत्र के अमृतत्व को सात्विक बुद्धि से अनुभव किया तो संसार में इसकी ख्याति बढ़ती ही गई। आज विध्नविनाशक देव का स्वरूप आध्यात्म की पहचान बन गया।

मंत्रदृष्टा ऋषि इस मंत्र का फल भी प्राप्त करता है। ब्रह्मीभूत हो जाता है ऐसा कहता है। ये ब्रह्मीभूत की पदवी मनुष्य को देवलोक से साक्षात्कार कराती है। ब्रह्मभूत व्यक्ति की पहचान को भी आर्शदृष्टि से देखा जा सकता है। ब्रह्मभूत व्यक्ति अपने महापापों से मुक्त हो जाता है, किसी प्रकार के विध्न उसे बाधा नहीं पहुंचाते हैं, दिन और रात्रि के पापों का शमन करता है। फलश्रुति में कहा गया है–

"एतदअथर्वशीर्षं योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते। स सर्वविध्नैर्न बाध्यते। सः सर्वतः सुखम् एधते। स पञ्चमहापापात् प्रमुच्यते। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातः अधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति .... धर्मार्थकाममोक्षं च विन्दति .... सहस्त्रावर्तनात् यं यं काममधीते तं तं अनेन साधयेत्। .... अनेन गणपतिभिः अभिसिंञ्चति स वाग्मी भवति .... स विद्यवान् भवति। इति अथर्वणवाक्यम्। ब्रह्मद्याचरण विद्यात् न विभेति कदाचनेति।"[7]

ऋषि कहता है कि यह अथर्वणवाक्य है पुराणों और वेदों के वाक्य जो पुरूषार्थ की व्याख्या करते हैं वह सब इसके पाठ से सिद्ध हो जाते हैं। यही आनन्द की स्थिति है जहाँ धर्म का आचरण करता हुआ प्राणी जीने के लिये अर्थ का सम्पादन करे और कामनाओं का त्याग करके या मन को संयमित करके आत्मसाक्षात्कार के द्वारा मुक्ति की कामना करे। यही वह आनन्द तत्व है जिसे विशिष्ट अध्यात्म विद्या भी कहा जाता है। यही ब्रहमादि का आवरण है जो जीव को कभी भयभीत नहीं होने देता है। ईश्वर इसे कभी अपने से अलग नहीं करता है। वेदवाक्य का भी महत्व प्रदर्शित करता है। ऋषि जब दुर्वाइरों से यजन करता है तो वह कुबेर के सदृश हो जाता है। यहाँ धन से तात्पर्य भी है और साधक के संतुष्ट मन से भी तात्पर्य है जो स्वंय को संसार का धनवान प्राणी समझने लगता है। जो धान के लावे से यजन करता है वह यशस्वी और मेधावान हो जाता है। मोदक से यजन करने

वाला मन की इच्छा का फल प्राप्त करता है। घृताक्त सभिधा से यजन करने पर साधक सब कुछ प्राप्त कर सकता है–

''यो दुर्वाअकुरैः यजति स वैश्रवणोपमो भवति। यो लाजै यजति से यशोवान भवति। स मेधावान भवति। यो मोदक सहस्त्रेण यजति स वाळिछतफलम् अवाप्नोति। यः साज्यसमिद्धिं यजति स सर्वं लभते स सर्वं लभते।[8]

गणक ऋषि ने इस गणेशविद्या के प्रचार को भी अपने आनन्द तत्व का सहभागी बनाया है। ऋषि की इच्छा है कि यह विद्या फले फूले और जीवों का उद्धार करे उनके कामनाओं की पूर्ति करें उपनिषद् रूपी यह विद्या सिद्धमंत्रों को प्रदान करती है। मनुष्य जीवन के महादोशों को दूर करके उस साधक को सर्वविद्ध बनाने की सामर्थ्य रखती है। अथर्ववेद का यह लोकमंगलकारी सूक्त वेदों की महिमा का वर्णन करने के साथ–साथ यह भी सिद्ध करता है कि मनुष्य नश्वर संसार में इस कर्मक्षेत्र में कर्म करता हुआ भी निर्विकार मन से आनन्द तत्व का भागी हो सकता है। ब्रहम से सायुज्य प्राप्त कर सकता है। पृथ्वी पर किये गये जपतप से साधक इतना अभिभूत हो जाता है इस सृष्टिकर्ता के प्रति भी पृथ्वी को मॉ समझकर उसकी स्तुति करता है। अथर्ववेद में 63 मंत्रों में पृथ्वी सूक्त की रचना हुई है।

सामाजिक जीवन में धर्म को अपनाते हुये कैसे आनन्द तत्व को प्राप्त करें, कैसे निष्काम कर्म करते हुये गौ की भी अभ्यर्थना की गई है। जिसका अमृतत्व हमें पुष्ट करता है। उसी गव्यपदार्थ से यजन करके ऋषि दिव्यशक्तियों का सृजन करते हैं। अतः अथर्ववेद गौ और गोष्ठ को अत्यधिक महत्व देता है–

"सं वो गोष्ठेन सुशदा सं रय्या सं सूभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम् तेना वः सं सृजामसि।।"[9]

अर्थात् गौओं के लिए स्वच्छ गोशाला बने, स्वच्छ जल पिलाया जाये। गौओं से उत्तम संतान हो तथा उन्हें अच्छा भोज्य पदार्थ दिया जाये। यहाँ ऋषि की दृष्टि मात्र स्वप्रयोज्य की नहीं है, वह कल्याण की चेष्टा से संसार को सुखी करना चाहता है। वह आनन्द रस सबको बांटना चाहता है। यही आत्मिक आनन्द है। ऋषि यह कल्पना करता है कि आनन्द की वृद्धि तभी हो सकती है जब प्राणी स्वस्थ्य मस्तिष्क वाला हो, शिष्टाचार और मूल सिद्धान्तों को जानने वाला हो। सभी लोगों में आपसी प्रेमभाव परिलक्षित हो, अतः अथर्ववेद में संज्ञान सूक्त की रचना की गई है।

"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः
अन्यो अन्यमभिः हर्यत वत्सं जातनिवाहन्या।।
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योको– सह वो युनज्मि।
सम्यळच्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिभिवाभितः।।"[10]

अथर्ववेद का ऋषि आनन्द तत्व की प्राप्ति जग में रहते प्राप्त करने पर बल देते हैं। गृहस्थ जीवन के धर्म को अपनाते हुये आनन्दतत्व की प्राप्ति चाहते हैं। अनुभूति तो जीवित रहते हो यह ज्ञान की पहचान है। मानव के सुखी जीवन के लिए कृषि की महिमा का भी वर्णन प्राप्त हो–

''इन्द्रः सीता नि गृहातु तां पूषाभिः रक्षतु
सा नः पयस्वती दुह्याम् उत्तराम् उत्तराम् समाम्'' [11]

अर्थात् विश्वामित्र ऋषि इसके मंत्रदृष्टा हैं। उनके अनुसार कृषि को सौभाग्य वर्धक माना गया है। उद्योग माना गया है। ये ही प्राणों का रक्षक है। हल से जोती गई भूमि के लिये ऋषि स्तुति करता है कि– हे इन्द्र! पृथ्वी को जो हल से जोती गई है अपने वर्षाजल से सीचों। धान्य को पोषण देने वाले सूर्य देव उसकी रक्षा करें। वह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रस से युक्त धन धान्य देती रहे। ऋषि विश्वामित्र आनन्द का अनुभव स्वस्थ्य शरीर में हो, इसके लिये ही कृषि की महता को स्वीकार करते हैं। उत्तम परिवार ही उत्तम गृह में निवास करता है। सुख, ऐश्वर्य और समृद्धिशाली जीवन के लिए अथर्ववेद एक वरदान है–

''गृहानैमि मनसा मोदमान अर्जं बिभ्रद् वः सुमतिः सुमेधाः।
अधोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणां पश्यन्पय उत्तरामि।।'' [12]

अर्थात् ऊर्ज (शक्ति को पुष्ट करता हुआ मतिमान और मेधावी मैं मुदित मन से गृह में आता हूँ।) कल्याणकारी तथा मैत्रीभाव से, सम्पन्न चक्षु से इन गृहों को देखता हूँ इनमें जो रस है उसका ग्रहण करता हूँ। ऋषि की कामना है कि घर अन्न, दूध, दही से भरे हों, लोग परस्पर शिष्ट भाषण करें। लोग रोगरहित और अक्षीण रहें। इस प्रकार स्वास्थ्य की कामना के साथ ही ऋषि रोग निवारण सूक्त को भी आर्शदृष्टि से देखता है– आनन्द तत्व का अनुभव करने के लिये अपने हाथ पर विश्वास करता है और कहता है कि– मेरा यह हाथ भाग्यवान है। सर्वाधिक भाग्यवान है। इन दोनों हाथों में औशाधियां भरी हैं। यह शुभ स्पर्श वाला है। इस सूक्त में सात सूक्तों की रचना है। सभी के अलग अलग ऋषि हैं। यह व्याख्या ऋग्वेद की है परन्तु अथर्ववेद के सात सूक्तों के रचयिता ऋषि शंताति हैं तथा देवता चन्द्रमा एवं विश्वदेवा हैं। इसके पाठ से रोगों से मुक्ति मिलती है। क्योंकि ऋषि जानता है कि प्राणी मन को संयमित तभी करेगा जब निरोग होगा। तभी उन हाथों से यजन करेगा, स्तुति करेगा, जो कल्याण करने वाला होगा। इसीलिये अपने हाथ पर विश्वास करके ऋषि अभीष्ट सिद्धि की क्रिया को सम्पादित करता हो–

''अयं में हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजो अयं शिवाभिमर्शनः।।'' [13]

इस प्रकार अथर्ववेद के सूक्तों से हम कल्याणकारी चिंतन करते हुये, यजन करते हुये उस अलौकिक आनन्द तत्व का पान करते हैं जो जीव और परब्रह्म को मंत्रों से जोड़ता है। र्निलिप्त भाव से कर्म करते हुये संसार सागर से पार लगाता है। वह अनिर्वचनीय आनन्द तत्व ही वेदों का, पुराणों का प्राण है। तभी अथर्ववेद का एक उपदेश है–

तमेव विद्वान न विभाय मृत्योः अर्थात उस आत्मा को ही जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता है यही है 'आनन्द तत्व'।

सन्दर्भ

1. बृहदारण्यक उपनिषद् (प्रथम अध्याय) अश्वमेघ ब्राहमण – शान्तिपाठ. मंत्र–1.
2. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – प्रथम सूक्त.
3. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – चतुर्थ सूक्त.
4. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – पंचम सूक्त.
5. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – सप्तम् सूक्त.
6. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – अष्टम् एवं नवम् सूक्त.

7. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – दशम्, एकादश एवं द्वादश सूक्त.
8. श्री गणपति अथर्वशीर्षम् – त्रयोदश सूक्त.
9. गोष्ठ सूक्त (अथर्ववेद तीसरा काण्ड)– प्रथम सूक्त.
10. अथर्ववेद (तीसरा काण्ड) संज्ञान सूक्त)– प्रथम एवं षष्ठ सूक्त.
11. अथर्ववेद (तीसरा काण्ड– 17वॉ सूक्त) कृषि सूक्त – चतुर्थ सूक्त.
12. अथर्ववेद (पिप्पलाद शाखा) गृह – महिमा – सूक्त – प्रथम सूक्त.
13. अथर्ववेद (चतुर्थ काण्ड 13वॉ सूक्त) रोग निवारण सूक्त – षष्ठ सूक्त.